एकादश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रह्लाद-चरित्राभिनय-दर्शन में

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण समाधिमन्दिर में)

श्रीरामकृष्ण आज स्टार थियेटर में प्रह्लाद-चरित्र का अभिनय देखने आए हैं। संग में मास्टर, बाबूराम और नारायण प्रभृति हैं। स्टार थियेटर तब वीडन स्ट्रीट में था। इसी रंगमंच पर बाद में एमेरेल्ड थियेटर और क्लासिक थियेटर का अभिनय सम्पन्न हुआ करता था।

आज रविवार, 30 अग्रहायण, कृष्णा द्वादशी तिथि, 14 दिसम्बर, 1884 ईसवी। श्रीरामकृष्ण एक बॉक्स में उत्तरास्य बैठे हैं। रंगालय आलोकाकीर्ण है। पास मास्टर, बाबूराम और नारायण बैठे हैं। गिरीश आए हैं। अभिनय अभी भी आरम्भ नहीं हुआ है। ठाकुर गिरीश के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वाह, तुमने सब बहुत अच्छा लिखा है।

गिरीश— महाशय, धारणा कहाँ? केवल लिख गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ना, तुम्हारी धारणा है। उस दिन ही तो तुम्हें कहा, भीतर भक्ति न रहे तो 'चलचित्र' (नाटक, पटचित्र) नहीं आंका जाता—

''धारणा चाहिए। केशव के घर में 'नववृन्दावन' नाटक देखने गया था। देखा था, कोई डिप्टी 800 (आठ सौ) रुपया महीना पाता है। सब ने कहा, अच्छा पण्डित है। किन्तु एक लड़के को लेकर खूब चञ्चल हो रहा

था! 'लड़का किस प्रकार अच्छे स्थान पर बैठे, कैसे अभिनय देख सके', इसी के लिए व्याकुल हो रहा था। इधर ईश्वरीय बातें हो रही हैं, उन्हें नहीं सुनेगा। बेटा केवल पूछता रहा, 'पिता जी यह क्या, वह क्या?' वे भी बेटे को लेकर अति चञ्चल! पुस्तक केवल पढ़ी ही हैं मात्र, किन्तु धारणा नहीं हुई।''

गिरीश— मन में होता है, थियेटर आदि अब और क्यों करना?

श्रीरामकृष्ण— ना-ना, वह रहे; उससे लोकशिक्षा होगी।

अभिनय आरम्भ हो गया। प्रह्लाद पाठशाला में पढ़ने-लिखने आए हैं। प्रह्लाद का दर्शन करके ठाकुर सस्नेह 'प्रह्लाद! प्रह्लाद!'— यह शब्द बोलते-बोलते एकदम समाधिस्थ हो गए।

'प्रह्लाद को हाथी के पैरों के नीचे' देखकर ठाकुर रो रहे हैं। 'अग्निकुण्ड में जब फेंक दिया' तब भी ठाकुर क्रन्दन करते हैं।

गोलोक के लक्ष्मीनारायण बैठे हैं। नारायण प्रह्लाद के लिए चिन्ता कर रहे हैं। वह दृश्य देखकर ठाकुर फिर समाधिस्थ हो गए!

द्वितीय परिच्छेद

भक्तसंग में ईश्वर-कथा-प्रसंग

(ईश्वर-दर्शन का लक्षण और उपाय— तीन प्रकार के भक्त)

रंगालय में गिरीश जिस कमरे में बैठते हैं, अभिनयान्ते ठाकुर को वहाँ पर ले गए। गिरीश ने कहा, ''क्या 'विवाह-विभ्राट' (विवाह-संकट) सुनेंगे?'' ठाकुर बोले, ''ना। प्रह्लाद-चरित्र के उपरान्त यह सब क्या? मैंने जभी तो गोपाल उड़ियों के दल से कहा था, तुम अन्त में कुछ ईश्वरीय बातें कहो। ईश्वरीय कथा तो सुन्दर हो रही थी, और फिर 'विवाह-विभ्राट', संसार की कथा! (मैं) जो था, वही हो गया— फिर दोबारा वही पहला भाव ही आ पड़ता है। ठाकुर गिरीश आदि के साथ ईश्वरीय बातें कर रहे हैं। गिरीश कह रहे हैं, ''महाशय, कैसा देखा?''

श्रीरामकृष्ण— देखा, साक्षात् वे ही सब बने हुए हैं। जिन्होंने स्वाँग रचा था, उन्हें देखा साक्षात् आनन्दमयी माँ! जो गोलोक (बैकुण्ठ) में राखाल (गोप) बने थे, उन्हें देखा साक्षात् नारायण। वे ही सब हुए हैं। किन्तु ठीक ईश्वर-दर्शन हो रहा है कि नहीं, उसका लक्षण है। एक लक्षण है आनन्द। संकोच नहीं रहता। जैसे समुद्र— ऊपर हिल्लोल-कल्लोल, नीचे गम्भीर जल। जिसको भगवान-दर्शन हुआ है वह कभी पागलवत्, कभी पिशाचवत्— शुचि-अशुचि-भेद ज्ञान नहीं। कभी अथवा जड़ की न्यायीं— क्योंकि अन्तर-बाहर ईश्वर के दर्शन करता हुआ अवाक् हुआ रहता है। कभी बालक की न्यायीं— बन्धन नहीं, बालक जैसे कपड़ा बगल में लेकर फिरता है। इस अवस्था में कभी बाल्य भाव, कभी पौगण्ड भाव (लड़कपन)! हँसी-मजाक करता है। कभी युवा भाव, जब कर्म करता है। लोकशिक्षा देता है, तब सिंह-तुल्य।

''जीव का अहंकार है, इस कारण ईश्वर को देख नहीं पाता। मेघ आ जाने के कारण सूर्य दिखाई नहीं देता। 'किन्तु दिखाई नहीं देता'— इस कारण क्या सूर्य नहीं है? सूर्य निश्चय ही है।

''किन्तु 'बालक का मैं'— इसमें दोष नहीं, अपितु उपकार है। साग खाने पर असुख हो जाता है, किन्तु हिंचे साग खाने से उपकार होता है। 'हिंचे साग' सागों में नहीं है। मिश्री मिठाइयों में नहीं है। और मिठाई असुख करती है, किन्तु मिश्री कफ-दोष नहीं करती।

''जभी तो केशवसेन से कहा था, और अधिक तुम से कहने पर तुम्हारा दलवल नहीं रहेगा! केशव डर गया। मैंने तब कहा 'बालक का मैं', 'दास-मैं'— इसमें दोष नहीं है।

''जिन्होंने ईश्वर-दर्शन किया है, वे देखते हैं कि ईश्वर ही जीव-जगत हुए हैं। सब ही वे हैं। इसी का नाम है उत्तम भक्त।''

गिरीश *(सहास्य)*— सब ही वे, किन्तु तनिक-सा 'मैं' रहता है— कफ-दोष नहीं करता।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, उसमें हानि नहीं है। वह तनिक-सा 'मैं'

सम्भोग के लिए है। 'एक मैं, एक तुम' रहने से ही आनन्द-भोग किया जाता है— सेव्य-सेवक का भाव।

''और फिर मध्यम श्रेणी का भक्त है। वह देखता है कि ईश्वर सर्व भूतों में अन्तर्यामी रूप में हैं। अधम श्रेणी का भक्त कहता है— ईश्वर हैं, वहाँ हैं ईश्वर— अर्थात् आकाश के उस पार। *(सब का हास्य)*।

''गोलोक (बैकुण्ठ) के राखाल देखकर मुझे बोध हुआ, वही (ईश्वर ही) सब हुए हैं। जिन्होंने ईश्वर-दर्शन किया है, उन्हें ठीक-ठीक बोध होता है— ईश्वर ही कर्त्ता हैं, वे ही सब कर रहे हैं।''

गिरीश— महाशय! मैं तो किन्तु ठीक-ठीक समझ गया हूँ, वे ही सब कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं कहता हूँ, 'माँ, मैं यन्त्र, तुम यन्त्री; मैं जड़, तुम चेतयिता— जैसे करवाती हो वैसे ही करता हूँ, जैसे बुलवाती हो वैसे ही बोलता हूँ।' जो अज्ञानी हैं वे कहते हैं— 'कुछ मैं करता हूँ, कुछ वे करते हैं'।

(कर्मयोग से चित्तशुद्धि होती है— सर्वदा पाप-पाप क्या— अहैतुकी भक्ति)

गिरीश— महाशय! मैं फिर करता ही क्या हूँ? फिर कर्म ही अथवा क्यों?

श्रीरामकृष्ण— नहीं जी, कर्म तो अच्छा है। धरती तैयार की हुई हो तो जो बोओगे, वह पैदा होगा। किन्तु कर्म निष्काम भाव में करना चाहिए।

''परमहंस दो प्रकार के हैं। ज्ञानी परमहंस और प्रेमी परमहंस। जो ज्ञानी हैं वे आप्तसार— 'मेरा होने से ही हुआ'। प्रेमी हैं, जैसे शुकदेवादि, ईश्वर को पाकर फिर लोकशिक्षा देते हैं। कोई आम खाकर मुख को पोंछ लेता है, कोई पाँच जनों को देता है। कोई छोटा कुआँ खोदने के समय टोकरी-फावड़ा लाते हैं, कुआँ खुद जाने पर टोकरी-फावड़ा उसी कुएँ में फेंक देते हैं। कोई टोकरी-फावड़े को रख देते हैं— यदि किसी मुहल्ले वाले को आवश्यकता हो। शुकदेवादि ने औरों के लिए टोकरी-फावड़े को रख लिया था। *(गिरीश के प्रति)* ''तुम औरों के लिए रखोगे।''

गिरीश— तो फिर आप आशीर्वाद करें।

श्रीरामकृष्ण— तुम माँ के नाम पर विश्वास करो, हो जाएगा।

गिरीश— मैं तो पापी हूँ।

श्रीरामकृष्ण— जो सर्वदा पाप-पाप करता है, वह साला पापी ही हो जाता है!

गिरीश— महाशय, मैं जहाँ पर बैठता हूँ, वहाँ की धरती भी अशुद्ध हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण— वह कैसे! हजार वर्ष के अन्धेरे कमरे में यदि प्रकाश आए, वह क्या थोड़ा-थोड़ा करके प्रकाशित होता है? या एकदम से दप् करके आलोकित हो जाता है?

गिरीश— आपने आशीर्वाद कर दिया है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा (भाव) यदि आन्तरिक है, तो मैं क्या कहूँ! मैं तो खाता-पीता हूँ और उनका नाम करता हूँ।

गिरीश— आन्तरिक नहीं है, किन्तु उतना तो दे ही जाएँ।

श्रीरामकृष्ण— मैं क्या हूँ? नारद, शुकदेव— ये लोग यदि होते तो!

गिरीश— नारदादि को फिर देख नहीं सकता। साक्षात् जो पा रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अच्छा! विश्वास!

कुछ क्षण सब-के-सब चुप रहे। फिर और बातें होती हैं।

गिरीश— एक ही विशेष साध (अभिलाषा) है— अहैतुकी भक्ति।

श्रीरामकृष्ण— अहैतुकी भक्ति ईश्वरकोटि की होती है, जीवकोटि की नहीं होती।

सब चुप हैं। ठाकुर ने अनमने गाना आरम्भ किया। दृष्टि ऊर्ध्व की ओर है—

श्यामाधन कि सबाई पाय (कालीधन की सबाई पाय)
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय।
शिवेरि असाध्य साधन मन-मजानो रांगा पाय॥
इन्द्रादि सम्पद सुख तुच्छ होय जे भावे माय॥
सदानन्द सुखे भासे, श्यामा यदि फिरे चाय।
योगीन्द्र मुनीन्द्र इन्द्र जे चरण ध्याने ना पाय॥
निर्गुणे कमलाकान्त तबु से चरण चाय!

[भावार्थ— श्यामा माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है (काली माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है)? अबोध मन समझता नहीं है कि यह क्या वस्तु है। मन लाल चरणों में लगा होने पर भी शिव के लिए ही यह साधन असाध्य है। इस माँ के भाव में होने पर इन्द्र आदि की सम्पद तुच्छ है। माँ श्यामा यदि मुड़कर देख लेती है तो मुख सदानन्द में रहता है। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, इन्द्र जिन चरणों का ध्यान नहीं पा सकते, निर्गुणी कमलाकान्त किन्तु यही चरण चाहता है।]

गिरीश— निर्गुणे कमलाकान्त तबु से चरण चाय!

तृतीय परिच्छेद

(ईश्वर-दर्शन का उपाय— व्याकुलता)

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— तीव्र वैराग्य होने पर उन्हें प्राप्त किया जाता है। प्राण व्याकुल होना चाहिए। शिष्य ने गुरु से पूछा था, कैसे भगवान को पाऊँगा? गुरु ने कहा, मेरे साथ आओ। यह कहकर एक तालाब पर ले जाकर उसे जबरदस्ती डुबाकर पकड़े रखा। कुछ क्षण पश्चात् जल से निकाल कर ले आए और बोले, तुम्हें जल के भीतर कैसा हुआ था? शिष्य ने कहा, प्राण छटपटा रहा था— मानो प्राण गया! गुरु ने कहा— देख, इसी प्रकार भगवान के लिए यदि प्राण छटपटाता है, तब ही उनको प्राप्त करोगे।

''जभी तो कहता हूँ, तीन आकर्षण एक साथ होने पर तब उनको प्राप्त किया जाता है। विषयी का विषय के प्रति आकर्षण, सती का पति में आकर्षण, और माँ का सन्तान में आकर्षण— ये तीनों प्यार यदि कोई एक संग भगवान को दे सकता है, तब फिर तत्क्षण साक्षत्कार हो जाता है।

''डाको देखि मन डाकार मत केमन श्यामा थाकते पारे! (हे मन पुकार की तरह पुकारो न! तब देखूँ श्यामा कैसे (आए बिना) रह सकेगी!) वैसा व्याकुल होकर पुकारने पर उनको दर्शन देना ही पड़ेगा।''

(ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय— कलिकाल में नारदीय भक्ति)

''उस दिन जो तुम से कहा था भक्ति के क्या मायने हैं— यही कि काय-मन-वाक्य से उनका भजन। काय— अर्थात् हाथों द्वारा उनकी पूजा और सेवा, पाँव से उनके स्थान पर जाना, कान से उनका भागवत सुनना, नामगुण-कीर्त्तन सुनना, चक्षु से उनका विग्रह-दर्शन करना। मन— अर्थात् सर्वदा उनका ध्यान-चिन्तन करना, उनकी लीला का स्मरण-मनन करना।

''कलि में नारदीय भक्ति— सर्वदा उनका नाम-गुण-कीर्त्तन करना। जिनके पास समय नहीं, वे साँझ-सवेरे हाथ से ताली बजा कर एक मन से 'हरि बोल-हरि बोल' बोल कर उनका भजन करें।

''भक्ति के 'मैं' में अहंकार नहीं होता। वह अज्ञान नहीं लाता, बल्कि (अपितु) ईश्वर-लाभ करवा देता है। यह 'मैं' मैं के मध्य में नहीं है। जैसे हिंचे साग सागों के मध्य में नहीं है, अन्य साग से असुख होता है किन्तु हिंचे साग खा लेने पर पित्त-नाश हो जाता है, उलटे उपकार ही होता है। मिश्री मिठाइयों में नहीं है। अन्य मिठाई खाने से अपकार होता है, मिश्री खा लेने पर अम्बल (अम्ल)-नाश होता है।

''निष्ठा के उपरान्त भक्ति है। भक्ति पक जाने पर भाव होता है। भाव घनीभूत होने पर महाभाव हो जाता है। सबके अन्त में है प्रेम।

''प्रेम है रज्जु का स्वरूप। प्रेम हो जाने पर भक्त के पास ईश्वर बन्ध जाते हैं और भाग नहीं सकते। सामान्य जीव का भाव तक ही होता है। ईश्वरकोटि बिना हुए महाभाव, प्रेम नहीं होता। चैतन्यदेव का हुआ था।

''ज्ञानयोग क्या है? जिस पथ द्वारा स्व-स्वरूप को जाना जाता है। 'ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है', यह बोध।

''प्रह्लाद कभी स्व-स्वरूप में रहते थे। कभी देखते— 'मैं एक हूँ, तुम एक हो'। तब भक्ति-भाव में रहते।

''हनुमान ने कहा था, राम! कभी देखता हूँ 'तुम पूर्ण, मैं अंश'। कभी देखता हूँ 'तुम प्रभु, मैं दास'। और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब देखता हूँ

'तुम ही मैं, मैं ही तुम'।''

गिरीश— आहा!

(संसार में (गृहस्थ में) क्या ईश्वर-लाभ होता है ?)

श्रीरामकृष्ण— संसार में होगा क्यों नहीं? किन्तु विवेक-वैराग्य चाहिए। ईश्वर वस्तु है और सब अनित्य, दो दिनों के लिए हैं— इसी का पक्का बोध होना चाहिए। ऊपर-ऊपर तैरने से नहीं होगा, डुबकी लगानी होगी!

यह कह कर ठाकुर गाना गाते हैं—

डुब डुब डुब रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्न धन॥
खुंज् खुंज् खुंज् खुँज्ले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥
ड्यांग ड्यांग ड्यांग डांगाय डिंगे, चालाय आबार से कोन् जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

(भावार्थ— ओ मेरे मन, तू (श्री गुरु के) रूप-सागर में डूब जा, डूब जा, डूब जा। तलातल-पाताल खोजने से तुझे अपने हृदय में प्रेम-रत्न-धन मिलेगा। खूब खोज लेने पर ही तुझे हृदय में आनन्दधाम वृन्दावन प्राप्त हो जाएगा। तब हृदय में सदा ज्ञान की बत्ती जलती रहेगी। भला ऐसा कौन है जो धरती पर 'डांगा' (नाव) चलाएगा? 'कुबीर' कहते हैं, तू सदा श्री गुरु के श्रीचरणों का ही अनुध्यान कर।)

''और एक विशेष बात है। काम आदि घड़ियालों का भय है।''

गिरीश— किन्तु यम का भय मुझे नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— ना, काम आदि मगरमच्छों का भय है, जभी हल्दी लगा कर डुबकी लगानी होती है— विवेक-वैराग्यरूप हल्दी!

''संसार में ज्ञान किसी-किसी को होता है। जभी दोनों योगियों की बात है, गुप्तयोगी और व्यक्तयोगी। जिन्होंने संसार (गृहस्थ) त्याग किया है वे व्यक्तयोगी हैं, उन्हें सब पहचानते हैं। गुप्तयोगी का प्रकाश नहीं। जैसे दासी सब कर्म करती है, किन्तु गाँव में बच्चों आदि की ओर मन पड़ा रहता है।

और जैसे तुम्हें कहा था, नष्टा स्त्री गृहस्थ में सब काज उत्साह के साथ करती है, किन्तु सर्वदा ही उपपति की ओर मन पड़ा रहता है। विवेक-वैराग्य होना है बड़ा कठिन। 'मैं कर्त्ता और ये सब वस्तुएँ मेरी हैं'— यह बोध सहज में नहीं जाता। किसी डिप्टी को देखा था, आठ सौ रुपया महीना वेतन। ईश्वरीय बातें हो रही थीं। उस ओर मन ज़रा भी नहीं दिया। एक लड़का संग में आया था, उसको एक बार इस जगह पर बिठाता रहा और एक बार उस स्थान पर बिठा रहा था। और एक जन को मैं जानता हूँ, नाम नहीं लूँगा। जप खूब किया करता था, किन्तु दस हज़ार रुपये। के लिए मिथ्या साक्षी दे दी थी। जभी तो कहता हूँ, विवेक-वैराग्य होने पर गृहस्थ में भी होता है।''

(पापी-तापी और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

गिरीश— इस पापी का क्या होगा?

ठाकुर ने ऊर्ध्वदृष्टि करके करुण स्वर में गाना पकड़ लिया—

भाव श्रीकान्त नरकान्तकारी रे।
नितान्त कृतान्त भयान्त होबि॥
भाबिले भव भावना जाक रे—
तरे तरंगे भ्रूभंगे त्रिभंगे जेबा भावे।
एलि कि तत्त्वे, ए मर्त्ये कुचित्त कुवृत्त करिले कि हबे रे—
उचित तो नय, दाशरथिरे डुबाबि रे—
करो ए चित्त प्राचित्त, से नित्य पद भेबे॥

(भावार्थ— हे मन, नर-कान्तकारी (मनुष्य को सुन्दर करने वाले) श्रीकान्त (श्रीकृष्ण) का चिन्तन करो। तुम यमराज के भय से बिल्कुल निडर हो जाओगे। उनका चिन्तन करने पर भव (जगत) की चिन्ता चली जाती है। जो त्रिभंगी का चिन्तन करते हैं, वे उनकी भ्रू-तरंग से भव-तरंग तर जाते हैं। क्या सोचते हो, इस मर्त्य शरीर में बुरी वृत्ति लेकर चित्त को बुरा करने से क्या होगा रे?— दाशरथि कहते हैं कि डुबाएँगे, ऐसा तो उचित नहीं है— जो अपने इस चित्त को उनके चित्त में लगा देता है, वह नित्यपद पाता है।)

(गिरीश के प्रति)— ''तरे तरंगे भ्रूभंगे त्रिभंगे जेबा भावे'' जो त्रिभंगी का चिन्तन करते हैं, वे उनकी भ्रूभंग से ही भव-तरंग को तर जाते हैं।

(आद्याशक्ति माहामाया की पूजा और आममुख्त्यारी व बकलमा)

''महामाया के द्वार छोड़ देने पर उनका दर्शन होता है। महामाया की दया चाहिए। इसीलिए तो शक्ति की उपासना है। देखो ना, निकट ही भगवान हैं किन्तु उनको जाना नहीं जाता। कारण, बीच में महामाया है। राम-सीता-लक्ष्मण जा रहे हैं। आगे राम, बीच में सीता, सबसे पीछे लक्ष्मण हैं। राम ढाई हाथ अन्तर पर हैं, किन्तु लक्ष्मण देख नहीं पाते।

''उनकी उपासना करने के लिए एक भाव आश्रय करना चाहिए। मेरे तीन भाव हैं— सन्तान-भाव, दासी-भाव और सखी-भाव। दासी-भाव, सखी-भाव में बहुत दिनों तक था। तब स्त्रियों की भाँति कपड़ा, गहना, ओढ़नी पहना करता था। सन्तान-भाव खूब अच्छा है।

''वीर-भाव अच्छा नहीं। नेड़ा-नेड़ियों का, भैरव-भैरवियों का वीर-भाव होता है। अर्थात् प्रकृति को श्रीरूप में देखना और रमण के द्वारा प्रसन्न करना। इस भाव में प्राय: ही पतन होता है।''

गिरीश— मेरा एक समय वही भाव आ गया था।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण चिन्तित होकर गिरीश को देखने लगे।

गिरीश— यही तो ज़रा-सी एक आड़ (अवरोध, ओट) है। अब उपाय क्या है? बताइये।

श्रीरामकृष्ण *(कुछ क्षण सोचने के बाद)*— उनको आममुख्त्यारी दे दो— उन्हें जो करना हो, करें।

चतुर्थ परिच्छेद

(सत्त्व गुण आने पर ईश्वर-लाभ— 'सच्चिदानन्द या कारणानन्द')

ठाकुर श्रीरामकृष्ण लड़के भक्तों की बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश आदि के प्रति)*— ध्यान करते-करते उन लोगों के सब लक्षण देखता हूँ। 'घर बनाऊँगा'— ऐसी बुद्धि उनमें नहीं है। स्त्री-सुख की

इच्छा नहीं है। जिनकी स्त्री है, वे एक संग में नहीं सोते। क्या है, जानते हो? रजोगुण के बिना गए और शुद्ध सत्त्व बिना आए भगवान में मन स्थिर होता नहीं— उनके ऊपर प्यार नहीं आता, उनको पाया नहीं जाता।

गिरीश— आपने मुझे आशीर्वाद दिया है।

श्रीरामकृष्ण— कहाँ! किन्तु कहा था कि आन्तरिक होने से हो जाएगा।

बातें करते-करते ठाकुर 'आनन्दमयी! आनन्दमयी!'— ये शब्द उच्चारण करके समाधिस्थ हो रहे हैं। समाधिस्थ काफी देर तक रहे। थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर कहते हैं, 'साले, सब कहाँ हैं?' मास्टर और बाबूराम को पुकार कर बुलवा लिया।

ठाकुर बाबूराम तथा अन्य भक्तों की ओर देखकर प्रेम में मतवाले होकर कहते हैं, ''सच्चिदानन्द ही अच्छे! और कारणानन्द?'' यह कह कर ठाकुर गाना गाने लगे—

एबार आमि भालो भेवेछि।
भालो भावीर काछे भाव शिखेछि॥
जे देशे रजनी नाइ सेइ देशेर एक लोक पेयेछि।
आमि किबा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे बन्ध्या करेछि॥
घु भेंगेछे आर कि घुमाइ योगे यागे जेगे आछि।
योगनिद्रा तोरे दिये मा, घुमेरे घुम पाड़ायेछि॥
सोहागा गंधक दिये खासा रंग चड़ायेछि।
मणि मन्दिर भेजे लोबे अक्ष दुटि करे कुंचि॥
प्रसाद बोले भुक्ति मुक्ति उभये माथाय रेखेछि।
(आमि) कालीब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि।

[भावार्थ— अब की बार मैंने ठीक सोच लिया है। एक अच्छा सोचने वाले से मैंने सोचने का ढंग सीख लिया है। मुझे उस देश का कोई जन मिल गया है जहाँ रात नहीं है। दिन हो या शाम, मैंने सन्ध्या को भी बन्ध्या कर दिया है। निद्रा टूट गई है। अब और क्या सोऊँ? योग के यज्ञ में जगा हुआ हूँ। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त योग-निद्रा पाकर, निद्रा को सुला दिया है। सुहागा, गन्धक द्वारा पक्का (असली) रंग चढ़ाया है। मन रूपी मन्दिर के फर्श पर दोनों अक्ष (आँखें) कुंचि-झाड़ू (brush) फेर रही हैं। रामप्रसाद कहते हैं भुक्ति-मुक्ति दोनों

को मैंने मस्तक पर रख रखा है। मैंने काली और ब्रह्म का मर्म जान कर धर्म-अधर्म सब छोड़ दिया है।]

ठाकुर फिर और गाना गा रहे हैं—

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची केबा चाय।
काली काली बोले आमार अजपा यदि फराय॥
त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे कभु सन्धि नाहि पाय॥
काली नामेर कतगुण केबा जानते पारे ताय
देवादिदेव महादेव जार पंचमुखे गुण गाय॥
दान व्रत यज्ञ आदि आर किछु ना मने लय।
मदनेर याग यज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥

(भावार्थ— गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है, मेरा प्राण यदि काली-काली कहकर समाप्त होता है? जो त्रिसन्ध्या काली-काली कहता है, वह पूजा-सन्ध्या नहीं माँगता। सन्ध्या ही उसकी खोज में फिर रही है, किन्तु कभी उससे सन्धि (मेल) नहीं कर पाती। काली-नाम के कितने गुण हैं! कौन उन्हें जान सकता है? देवादिदेव महादेव जिसका पाँच मुखों से गुण गाते हैं। मैं दान, व्रत, यज्ञ अब और कुछ भी मन में नहीं लाता हूँ। ब्रह्ममयी के रांगा (लाल) पाँव ही मदन का याग-यज्ञ हैं।

''मैं माँ से प्रार्थना करता हुआ कहा करता था— माँ! और कुछ नहीं माँगता, मुझे शुद्धाभक्ति दो।''

गिरीश का शान्त भाव देखकर ठाकुर प्रसन्न हुए हैं और कह रहे हैं, ''तुम्हारी यही अवस्था ही भली है, सहज अवस्था ही उत्तम अवस्था है।''

ठाकुर नाट्यालय के मैनेजर के कमरे में बैठे हुए हैं। किसी ने आकर कहा, आप क्या 'विवाह-विभ्राट' देखेंगे? अब अभिनय हो रहा है।

ठाकुर गिरीश से कहते हैं, ''यह क्या किया? प्रह्लाद-चरित्र के उपरान्त 'विवाह-विभ्राट'? पहले पायस-मुण्डी, तत्पश्चात् सुक्तनि*!''

---

* पायस-मुण्डी = पनीर की खीर।

* सुक्तनि = करेला आदि मिलाकर पकाई हुई बिना मिर्चों की एक तरकारी जो बंगाल में भोजन के आरम्भ में खाई जाती है।

(समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण और वारवणिता)

अभिनय के अन्त में गिरीश के उपदेश से नटियाँ (actresses) ठाकुर को नमस्कार करने आई हैं। उन सबने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। भक्तगण कोई खड़े होकर, कोई बैठकर देख रहे हैं। वे देखकर अवाक् हैं कि उनमें से कोई-कोई ठाकुर के पाँव में हाथ देकर नमस्कार करती हैं। पाँव में हाथ देते समय ठाकुर कहते हैं, ''माँ थाक्, थाक्; माँ थाक्, थाक्।'' (माँ बस, बस; माँ बस, बस)।

उनके नमस्कार करके चले जाने पर ठाकुर भक्तों से कहते हैं— ''सब ही वे, एक-एक रूप में।''

अब ठाकुर गाड़ी पर चढ़े। गिरीश आदि भक्तों ने संग-संग जाकर उन्हें गाड़ी पर बिठा दिया है।

गाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते ठाकुर गम्भीर समाधि में मग्न हो गए!

गाड़ी के भीतर नारा'ण आदि भक्त बैठ गए। गाड़ी दक्षिणेश्वर की ओर जा रही है।